Jagirdari System in the South-Eastern Rajasthan during the Eighteenth Century

Prof. Narayan Singh Rao

The states of Rajputana, in the context of 18th century, restricted their role by performing the twin duties of defending the state frontiers and collecting the revenue.[1] The duties were often compromised into one and while on the one hand the state acted as the centrifugal figure for both, it actually diversified its responsibility into a number of channels fed directly at the cost of the state and indirectly at the cost of Karsha (peasants). We find in the document that the Rajput states, like the Mughal Empire was strong at the center but weak in its provinces, so these states opted to pay its servants both, civil and military, through revenue assignments, generally termed as tankawah jagirs (revenue assignments against their salaries). This was a legacy of the past determined by the clan or bhai-bant system[2] and it was made more relevant under the Mughal pattern of administration. As early as 1711 V.S. during the time of Rao Mukund Singh (1706-1714 V.S.) we find that the greater part of the land was assigned against Jagirs.[3]

The holder of the patta of such assignments were almost invariably required to serve the ruler with a number of footmen, horses and beasts of burden. Such revenue assignments were known as Jagirs,[4] and the assignees were known as Jagirdars (holders of jagirs).[5] In Harawati the bulk of the state territory consisted of mauza (villages) were assigned in Tankawah jagirs. Since jagiri villages were usually assigned against Tankawah (salary) it was necessary to determine in each case an area that would yield in revenue an amount equivalent to the sanctioned pay and cost of the beast of burden. A standing assessment (Rekh) was, therefore, prepared for each unit of territory, the mauza and, more especially, the Pargana or Hawala. To serve best it ought to have been prepared as closely as possible to the upat (expected yield).[6] But in actual practice it was not so. The Hada rulers did not assign the Jagirs on the basis of the jama figures which had remained more or less stable since the times of Akbar

Professor G.N. Sharma Memorial Lecture

The Ideal of Maharana Pratap in North-East India : Resistance of Indigenous Rulers against the Muslim Invaders

Prof. Narayan Singh Rao
Central University of Himachal Pradesh
Sapt Sindhu Parisar Dehra - 177101
Email:- raonarayan2005@gmail.com

3-4 September, 2021

XXXV Annual Session of Rajasthan History Congress
Janardan Rai Nagar Rajasthan Vidyapeeth (Deemed to be University),
Udaipur (Rajasthan)
email : rajhisco@gmail.com website : www.rajhisco.com

ISSN 2321-1288

Professor Gopinath Sharma Memorial Lecture

The Ideal of Maharana Pratap in North-East India : Resistance of Indigenous Rulers against the Muslim Invaders

Prof. Narayan Singh Rao

Mr. President fellow delegates and the Ladies and Gentlemen participating in the 34th Annual session of Rajasthan History Congress in the city of lakes Udaipur. I take this opportunity to express my profound gratitude and sincere thanks to the Executive committee members of Rajasthan History Congress for extending me kind invitation to deliver Prof. Gopinath Sharma Memorial Lecture in the 35th Annual Session hosted by Rajasthan Vidhyapeeth Udaipur. I consider this as a great personal honour as well as honour of my revered guru Prof. Dilbagh Singh and the Central University of Himachal Pradesh where I am currently teaching History.

First of all I bow my head in respect of Professor Gopinath Sharma who was a stalwart historian of International repute who served in different capacities and rose to the position of Professor. He gave a new direction and an insight to the craft of history writing. He focused on regional history and deployed archival records as well as other sources. Due to his valuable contributions the History of Rajasthan secured a highly respectable space not only in India but across the globe. Prof. G.N. Sharma was an erudite Scholars who specialized in Medieval history of Rajasthan and his books on Mewar Mughals Relations and Socio-Economic, Cultural and

---

* *I express my sincere thanks and profound gratitude to Professor Dilbagh Singh for his valuable suggestions and guidence.*

मुगल काल में इतिहास लेखन

डॉ० राघवेन्द्र यादव

सहायक आचार्य (इतिहास विभाग), हिमाचल पदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला (हि.प.)

भारत में इतिहास लेखन की परम्परा वैदिक काल से ही विद्यमान थी परन्तु पाश्चात्य विचारकों ने भारत को प्राचीन इतिहास लेखन परम्परा का नकारते हुए प्रचारित किया कि भारतीय असभ्य और आक्रान्ताओं से प्रभावित रहने के कारण अपना इतिहास नहीं लिख सके उन्होंने तो विदेश यात्रियों के विवरण को ही इतिहास माना भारतीय इतिहास में उत्तर भारत पर मुहम्मद गोरी का विजय 12वीं शताब्दी के अंत का एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम है जिसके बाद भारत में इस्लाम आधारित राजत्व व्यवस्था का प्रारम्भ हुई उनके द्वारा इतिहास-लेखन की परंपरा पारंभ की गई फारसी भाषा में इतिहास-लेखन का साहित्य उनके द्वारा पर्याप्त मात्रा में तैयार किया गया वास्तविकता यह है कि मुस्लिम संभ्रांत वर्ग में विधिशास्त्र और धार्मिक पांडुलिपि के बाद इतिहास-लेखन तीसरा महत्वपूर्ण अध्ययन माना जाता था 16वीं शताब्दी में मुगलों के आगमन के बाद इतिहास-लेखन में नई परम्परा पारम्भ हुई[1]

फारसी में तुर्कों के बारे में इतिहास-लेखन जो 12वीं शताब्दी में भारत में आए उसी समय से पाया जा सकता है जहाँ तक दिल्ली सल्तनत की बात है हमारे पास लगातार उपलब्ध सात फारसी भाषा में सल्तनत (1526) के अंत तक का है बहुत सारे लेखक राजदरबार में अधिकारी के पदों पर थे सल्तनत कालीन भारतीय इतिहास घटनाओं का सरकारी पक्ष हैं न कि नीतियों और घटनाओं का मूल्यांकन जिसमें भारतीय अथवा हिन्दू प्रतिराध पूर्णतः विलापित हैं

फारसी के कायों अब्दुर्रज्जाक का मातला दन (यात्रा-वृत्तांत) तुर्सी का सियासतनामा (पशासन और राजनीति) फक-इ मुदाबिर का अदबुल-हर्ब वास-शजाअत (युद्ध) कुछ महत्वपूर्ण कायें है[2] कुछ अरबी के कायें भी उस काल के उपलब्ध हैं इब्नबतूता (रहला) और शिहब-अल दीन अल-उमरी (मसालिक अल-अब्सर ममालिक अल-अंसार) ने बहुत अच्छे यात्रा वृत्तांत पदान किए हैं[3]

जियाउद्दीन बरनी ने अपनी पुस्तक तारीख-ए-फिराजशाही में इस इस्लाम आधारित शासन व्यवस्था के महत्व का बड़ा विस्तार से बयान किया है[4]

मध्यकालीन भारत के इतिहास लिखन कि जो लहर हिंदुस्तान में फली उसमें इस्लामी इरानी और हिंदुस्तानी परंपराएं माजूद थीं इसमें कुछ अपनी विशषताएं थीं :

1. राजनीतिक घटनाओं का विस्तार से बयान किया जाता जसा कि मिनहाजुद्दीन सिराज की तबकात-ए-नासिरी से जाहिर होता है
2. तारीखों के पयाग पर ज्यादा जार दियाजान लगा
3. घटनाओं के समकालीन विवरणों पर ज्यादा ध्यान दिया गया पांतों का इतिहास लिखन को पथा भी जारपकड गई
4. एक अन्य विशषता है इतिहास पर व्यक्तिगत विचारों और भावनाओं को छाप पडना जिसको बहतरीन मिसालें बरनी और बदायूनी की किताबें हैं
5. इस दौर को एक विशषता सामाजिक ढांच के खिलाफ किसी भी चुनौती का अभाव है संतों के रवय का विद्रोही नहीं कहा जाना चाहिए क्योंकि वे खुद उस समाज का एक अंग थे उन्होंने पादशाह और समाज के सामंती ढांचों को मुखालफत नहीं की शायद इसलिए कि उन पास उसका कोई इलाज नहीं था राजाओं और राजदरबारों से वे इसलिए अलग रहना चाहते थे ताकि राजाओं के गुनाहों और जुल्मों के साथ उनका न जोडा जा सके इसलिए ''शाषण शब्द का पयाग करते समय हमें मध्यकालीन भारत के नजरिया-ए-इन्साफ का सामने रखना और इस शब्द का बहुत सावधानी से इस्तमाल करना चाहिए
6. मध्यकाल को धर्म का युग कहना शायद अनुचित न होगा क्योंकि उस समय में धर्म के अलावा कोई दूसरा दशन उपलब्ध नहीं था सार मत और सिद्धांत धार्मिक ढंग से समझाए जाते थे इसलिए यह स्वाभाविक था कि शासक वर्ग अपनी कुछ नीतियों को धर्म का रंग देकर पेश करवाए उस जमाने के इतिहासकारों ने भी धार्मिक शब्दावली का भरपूर इस्तमाल किया क्योंकि उनकी शिक्षा धार्मिक मदरसों में होती थी और उस जमाने का शिक्षित व्यक्ति धर्म का विद्वान होता था इन इतिहासकारों के लेखों का पढते समय इस पृष्ठभूमि को समझ लेना जरूरी है इतिहास की घटनाओं में बहुत से एसे पमाण मौजूद हैं जिनसे यह सिद्ध किया जाता है कि इन धार्मिक शब्दों के इस्तमाल का खास कारण उस जमाने का लिखने का तरीका था और इस पवृत्ति का उन लोगों को धार्मिक कट्टरता से नहीं जोडा जाना चाहिए मिसाल के तौर पर शाहजहाँ के काल में मध्य एशिया में होने वाले युद्ध में दोनों तरफ मुसलमान थे

तत्कालीन इतिहासकार मुखालिफ फौज को लश्कर-ए-कुफ्र और शाही फौज को लश्कर-ए-इस्लाम कहता है साफ जाहिर है कि ये शब्द इस काल को लिखने की कला को जाहिर करते हैं किसी तास्सुब और धार्मिक कट्टरता को नहीं लेकिन जब इन शब्दों का इस्तमाल हिंदुस्तान के लोगों के संदर्भ में किया गया तो उसको धार्मिक कट्टरता और मुसलमानों को हिंदू-दुश्मनी ही समझा गया इस शब्दावली ने मध्यकालीन भारत के इतिहास में बहुत भ्रम पैदा कर दिया है इसलिए जरूरी है कि मध्यकालीन इतिहास लेखन को इस विशषता का ध्यान में रख कर ही इतिहास का अध्ययन किया जाए

सिद्धांत के अनुसार पादशाह के अधिकारों पर कुरान और हदीस का अंकुश था उलमा इस बात का पूरा ख्याल रखते थे कि शासक वर्ग शरीयत के बताए हुए रास्ते पर चले